कहानी

तेईस नुआ दो सौ सात

नीलमणि साहू महापात्र

बचपन से आज तक गणित विषय के प्रति एक आतंक का भाव मेरे मन में रहा है। संख्याओं के भीतर जो आदान-प्रदान चलता है, वह मेरे इस साधारण से दिमाग में प्रवेश नहीं कर पाता। यद्यपि मैं समझ गया हूं, यह पृथ्वी और जीवन जितने परिमाण में कविता, कहानी, दर्शन, कला, संगीत या धर्म से नहीं चलता उससे लाखों गुना संख्या या अंकों के दांव-पेंच से चलता है। शत-प्रतिशत लोगों की जीवन-धारा इसी गणितिक साध्य और साधना पर ही निर्भर करती है। मेरा अपना जीवन भी उससे अलग नहीं है। सिर्फ उतना ही नहीं, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के सभी विभागों पर अभी गणित ही अधिकार किए हुए है। अब तो दर्शन, व्याकरण, अर्थशास्त्र, चित्रकला, यहां तक कि संगीत आदि सभी क्षेत्रों में गणित आवश्यक हो गया है। परिमाप व परिसंख्या विद्या के रूप में भी यह साम्राज्यवादी फासिस्ट गणित-शास्त्र हमारे जीवन के सभी तत्व और तथ्य की सीमा पर अधिकार कर बैठा है।

पर मेरा दुर्भाग्य है, कि अपने बचपन से ही मैं इस विशाल विद्या के प्रति ध्यान नहीं लगा पाया। सिर्फ साहित्य, संगीत, धर्म, दर्शन आदि का होकर ही मतवाला रहा। हालांकि, गणित के प्रति आतंक या वैराग्य के लिए केवल मैं ही ज़िम्मेदार हूं, ऐसा नहीं है, मुझे बाल्यावस्था में पढ़ाने वाले कुछ निष्ठुर, अहंकारी पंडित, बेंतधारी गणित शिक्षक भी इसके लिए ज़िम्मेदार हैं।

उन्होंने जब मुझे गिनती सिखाई या उन्होंने जब मुझे एक, दो, तीन...गिनना सिखाया उसे मैं आसानी से जल्दी ही सीख गया और मुझे संख्याओं को जोड़ना भी आ गया। मुझे याद है – ऊपर नीचे लिखा हुआ चार अंकों वाला छह स्तरों युक्त जोड़ मैं एक मिनट में कर सकता था। तब तक मेरे गणित के ज्ञान पर किसी को संदेह न था। मगर असुविधा हुई – घटाने और भाग देने में। गुणा भी मैं आसानी से कर लेता था, चाहे जितना बड़ा गुणा क्यों न हो। किन्तु परेशानी थी – 9534 से 8679 को घटाने में। 4 में से 9 घटाते समय उसके पहले की संख्या से दस उधार लाकर उसे चार में मिलाकर फिर उससे 9 घटाया जाएगा और उस संख्या को नीचे लिख दिया जाएगा, साथ ही ऊपर की संख्या की ओर देखकर सोचते वक्त मेरा दिमाग गोलमाल हो जाता था। मैंने कहां से उस 10 संख्या को उधार लाकर अपना काम चलाया था, इससे दूसरी संख्याओं की हालत क्या होगी। यह न समझ पाने के कारण मैं हड़बड़ा जाता और तभी मेरी पीठ पर बेंत पड़ती एवं मूर्ख, गधा, बुद्धू जैसे विशेषणों की मुझ पर वर्षा होने

लगती। उसी समय मेरी बाल्य-प्रेमिका छः वर्ष की चारुलता मेरे पास बैठ कर, उस घटाने को सही बनाकर मेरी पिटाई और गाली सुनकर हंसती। तब मेरे सिर के भीतर मेरे आंसू जमा होकर मेरी सामान्य सूझबूझ को डूबो देते थे। मैं उस घटाने को उस दिन से आज तक अच्छी तरह नहीं सीख पाया।

उसी तरह भाग सीखते वक्त भी परेशान हुआ हूं और मार-गालियां भी मिली हैं। 3879 को 25 से भाग देना कम मुसीबत भरा और कष्टदायक नहीं है। पहले कोई दिक्कत नहीं हुई। 25 दूने 50 नहीं जाएगा, इसलिए 25 एकम 25 रखकर 38 से घटा देने पर आसानी से 13 बचा। पर उसके बाद जो आगे के कारनामे शुरू हो जाते। ऊपर से नीचे संख्याओं को उतारना फिर 25 से भाग देकर भागफल और भाग शेष रखना – बाप रे बाप! सिर की नसें फटी जा रही हों और ऊपर से गणित शिक्षक द्वारा बेंत से पिटाई और गधा, मूर्ख आदि विशेषण एवं मेरी बाल्य-प्रेमिका गणित विदूषी व हमारी कक्षा की लीलावती चारुलता की गर्वीली मुस्कान। ओह, उन दिनों की गणित कक्षाएं मेरे लिए कितनी कष्टदायक और यंत्रणामय हुआ करती थीं।

इसके अलावा मेरे मन में भी कुछ संदेह रहता था – जिसे कि उस वक्त कोई समझा नहीं सका था जैसे – 5 तिनकों के साथ 7 कंचे मिलने पर कितना होगा? मैं सोचता कितना क्या हुआ? कितना कैसे होगा? 5 तिनकों के साथ आखिर 7 कंचे मिलेंगे किस तरह? 5 बकरियों के साथ 7 भेड़ें मिलकर चर सकती हैं, मगर लकड़ी के साथ कंचे कैसे मिल सकते हैं?

गणित के गुरुजी इसी तरह के ऊल-जलूल सवाल हमेशा किया करते थे। उसी तरह 25 केलों को अगर पांच लोगों में बराबर बांटा जाए – तो एक आदमी को कितने केले मिलेंगे? ऐसा सवाल होगा लेकिन केले के दर्शन ही नहीं मिलेंगे, फिर किन भाग्यवानों को वो केले बांटे जाएंगे, या उस बंटवारे का दायित्व किसे दिया जाएगा, या वे बांटने वाले उन केलों में से खुद एक केला खा सकेंगे या नहीं? ऐसे ढेरों सवाल मेरे दिमाग में उथलपुथल मचा रहे होते, परन्तु गणित के गुरुजी उन सबके बारे में कोई सूचना नहीं देते। परिणामस्वरूप 'पांच पंजे पच्चीस' मुझे मालूम होने के बाद भी मैं – सभी के हिस्से पांच-पांच केले पड़े – कह नहीं पाता और गणित के गुरुजी की दृष्टि में अनमना साबित होकर पिटाई भी खा जाता था।

इसी तरह संख्या जब व्यक्ति विशेष या प्राणी विशेष के साथ जुड़ जाती थी तब और भी बड़ी समस्या मेरे सामने आ खड़ी होती थी। मान लीजिए एक गणित इस प्रकार है – राम जिस

काम को 6 दिनों में कर सकता है, श्याम और हरि मिलकर उसे 2 दिनों में कर लेते हैं। तब श्याम अकेले उस काम को कितने दिनों में करेगा? हालांकि मैं बचपन में आज की तरह ही मूर्ख था, मगर ये गणित का सवाल मेरे दिमाग में कई बौद्धिक समस्याएं पैदा करता था। जैसे – सवाल में स्थित 'काम' वास्तव में किस तरह का काम है? भाजी तोड़ना एक काम है, आम बटोरना भी एक काम है, हल चलाना, मिट्टी साधना भी एक काम है और गणित के सवाल हल करना भी एक काम के रूप में माना जाएगा या नहीं? इसका उल्लेख गणित के गुरुजी अपने सवाल में नहीं करते थे।

उसी तरह राम, श्याम और हरि आदि कौन हैं, और उनका स्वास्थ्य, शक्ति, कार्य कुशलता और उनके 'पारिवारिक झमेलों का विवरण' भी उस सवाल से जानने को नहीं मिलता। और इन सबके बाद राम, श्याम, हरि आदि वे रहते कहां हैं, वे नाटे हैं, लम्बे हैं, मोटे हैं या पतले, गोरे हैं या काले? वे इस सवाल में स्थित 'काम' को क्यों करते हैं और करने के बाद क्या पाते हैं? ये सब सवाल उस वक्त मेरे दिमाग में चक्कर लगाया करते थे, फलतः मैं सवाल का जवाब न दे पाकर पिटाई और फटकार खाता।

उसके बाद मैं धीरे-धीरे बड़ा हुआ, मेरे लिए विधिवत एक गणित की किताब आई। उस किताब को देखते ही मेरा दिमाग खराब हो गया। हमारी उस वक्त तक पढ़ी हुई कोई किताब – साहित्य, भूगोल, इतिहास या प्रकृति-अध्ययन – उस गणित की किताब जैसी डरावनी दिखाई नहीं दी थी। सभी पुस्तकों में तरह-तरह के

चित्र थे। बिल्ली, कुत्ते, पुरी का मंदिर, सांप, नेवला, पहाड़, पेड़, चिड़िया, मछली, ताजमहल, मनुष्य, चांद और सूरज, बादल, अकबर, बाबर, दशरथ, मुनि-ऋषि, यहां तक कि इंद्र, वायु जैसे देवताओं के चित्रों से युक्त वे किताबें बड़ी आकर्षक लगती थीं। लेकिन इस गणित की किताब में शुरू से आखिर तक सिर्फ गणित के सवालों के सिवाय और कुछ न था। तब काफी तलाशने के बाद मैंने उसमें से एक घड़ी का चित्र खोज निकाला, उस तस्वीर की स्याही भी फीकी पड़ गई थी। लेकिन उसमें तीन कांटे स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। कांटे एक से बारह तक की संख्या में से किसी-न-किसी की ओर इशारा कर रहे थे। उसके नीचे बड़े ही कठिन सवाल थे। जैसे – घड़ी की बड़ी सुई जब दस पर और मिनट की दो पर हो, तब दस बजकर

कितने मिनट हुए?

छोड़िए भी – उस किताब को देखकर मैं काफी चिढ़ गया। लेखक या पुस्तक प्रकाशक ने मुखपृष्ठ पर एक अच्छा-सा चित्र भी नहीं दिया था। सादे मुखपृष्ठ की किताब मुझे डायन सी लग रही थी। किताब के ऊपर एक बेहतर-सा चित्र तो दिया ही जा सकता था – जिसमें एक बच्चा स्लेट पकड़ कर गणित के सवाल हल कर रहा हो और उसके पास उसकी छोटी बहन कुछ कंचों के साथ लकड़ी के तिनके मिलाने की कोशिश कर, उन्हें न मिला पाने के कारण रो रही हो? मन-ही-मन चिढ़ कर सोच रहा था – यह पढ़ाई पिशाचिन और मास्टर व किताब पिशाच की तरह हैं।

उस पुस्तक से गणित सीखते समय मेरा दिमाग चकरा जाता। अगर कोई एक गणित का सवाल पूछे तो आंखों के सामने अंधेरा छा जाता था। जैसे-जैसे गणित के प्रति मेरी अरुचि जितनी बढ़ती गई, उतना ही मैं कक्षा, स्कूल, घर और गांव में भी मंदबुद्धि या मूर्ख के रूप में जाना जाने लगा। कक्षा के बीस विद्यार्थियों में हम तीन सर्वसम्मति से 'गधा' उपाधि पा चुके थे। मेरे अलावा अन्य दो में से एक था – माधिया बारिक। उसे हम माधो कहकर

पुकारा करते थे। माधो माधिया के साथ गधा या गधिया उपाधि खूब जम जाती थी। इस उपाधि को लेकर उसके मन में कोई लज्जा या अपमान जैसा भाव कभी नहीं आता। उसे इस नाम से पुकारने पर या उसकी पीठ पर दो घूंसा जमाकर कहने पर भी वह हंसते हुए लोटपोट हो जाता था। 'ध' अनुप्रास उसके कान में जैसे गुदगुदी पैदा कर देती थी। (आह! रहने दो उसके विषय में और कुछ नहीं कहूंगा – उसे कोढ़ हो गया। वह अपने बरामदे में फटी गुदड़ी, व चिथड़ों में मक्खी-मच्छरों के बीच सोते हुए एक दिन मर गया। उसे उसके सब भाई मिलकर मिट्टी का तेल डालकर जला आए।)

दूसरे गधे का नाम सोवणी सेण था। पर वह इतना गधा नहीं था। कंचे और गिल्ली-डंडा खेल में वह उस्ताद था। उछल-कूद में बंदर भी उसे नहीं हरा सकता था। इसके अलावा झूठ बोलते वक्त उसकी ज़ुबान कतरनी की तरह चलती थी। मार-पीट उसके लिए आम बात थी। हेड पंडित का बक्सा खोलकर रुपए चुराने से लेकर, गोविंद सेनापति के नारियल के पेड़ पर चढ़कर नारियल तोड़ लाने जैसे असाध्य काम करने के बावजूद वह हर जगह निदोष साबित होकर निकल आता था। इन सब में उसकी जालसाज़ बुद्धि बहुत काम आती थी। पर गणित करते वक्त उसकी वह विचित्र बुद्धि काम नहीं आती। गणित के गुरुजी से मार व गाली खाता। मगर ताज्जुब की बात यह है, इसके लिए भी किसी प्रकार की चिंता उसे न थी। उसे कोई मूर्ख या गधा कहे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह अपनी चोरी, लड़ाई-झगड़े में ही मशगूल रहता था।

पर सारी चिंता और सारे दुख मेरे ही थे। पिटाई के लिए मुझे उतना दुख नहीं था। उस समय एक नीति-वाणी हम हमेशा सुना करते थे – मार खाए धमधम विद्या आए झमझम। अपनी मूर्खता के प्रति मैं व्यथा और वेदना अनुभव करता था। मैं अपने को काफी आहत और अपमानित भी अनुभव करता था।

एक दिन हमारे सेकेण्ड पंडित, गणित शिक्षक की अनुपस्थिति में कक्षा में आकर हमसे तरह-तरह की मज़ेदार बातें कर रहे थे। उसी दरम्यान वे मौखिक गणित के सवाल भी हमसे पूछने लगे। एक सवाल था – एक पेड़ पर 106 चिड़िया बैठी हुईं थीं। एक बंदूकधारी के बंदूक दागने पर 6 चिड़िया मरकर नीचे गिर गईं। अब बताओ कितनी चिड़िया बचीं? हमारी कक्षा का पहला गधा, माधो बारिक शुरू से ही सवाल नहीं समझ पाया। चिड़िया और पेड़ की बात ही समझा। बंदूक शब्द और दागने की क्रिया ने

उसे बड़ी असुविधा में डाल दिया। वह सवाल सुनकर हंसने लगा। उसके बाद हमारा दूसरा गधा सोवणी सेण भी सवाल नहीं सुन पाया। वह खिड़की में से बाहर झांककर बदमाश लड़कों के साथ आंखों से इशारे कर रहा था। तब उसके दिमाग में ज़रूर कोई शैतानी सूझ रही थी। पर मैंने सवाल सुनकर उसका उत्तर सोच लिया। और जब सर ने कहा, "कौन कह सकता है, हाथ उठाओ।" तब दूसरे बुद्धिमान विद्यार्थियों के साथ मैंने भी हाथ उठाया। मगर सर मुझ जैसे विख्यात गधे से न पूछ कर एक-एक कर दूसरे होशियार छात्रों से पूछते चले गए। वे सभी इस सवाल को साधारण घटना समझकर 106 में से 6 घटाते हुए "सौ चिड़िया, सौ चिड़िया" कहकर चिल्लाए। अचानक मैं उन बुद्धिमानों के पतन से उत्साहित होकर ज़ोर से बोला, "सर ! एक भी चिड़िया पेड़ पर नहीं रही।" सर ने इतना सुनकर आश्चर्य से मेरी ओर देखा।

गधे की इतनी बुद्धि! मेरा उत्तर सुनकर आमतौर पर गणित में बुद्धिमान माने जाने वाले विद्यार्थी, मेरे घटाने के ज्ञान की शोचनीय परिणति देखकर हंस उठे। पर जब सर ने मेरा उत्तर ठीक है कहकर सही होने का कारण समझा दिया तो उस समय वे कुछ लज्जा अनुभव करने लगे। मेरे प्रति पहली बार उनके मन में ईर्ष्या का भाव जाग उठा।

मेरा उत्तर सही होने का कारण था – मैंने 106 से 6 संख्या के घटाने की ओर ध्यान न देकर, बंदूक की आवाज़ के बारे में सोचा। पर हमारी कक्षा के वे तथाकथित बुद्धिमान 106 पक्षियों को 106 संख्या समझ बैठे थे।

उसके बाद सेकेण्ड पंडित ने एक और मज़ेदार मौखिक सवाल पूछा, "चार सौ अस्सी – शून्य ले गई बूढ़ी मौसी – अब बताओ रहा कितना? और गया कितना?"

हमारी कक्षा के बुद्धिमान गणितज्ञों ने तुरन्त 480 से शून्य मिटाकर 48 रखे और 480 से 48 घटाकर एक स्वर मे चिल्ला उठे – 432, सर 432 । 432 गया और 48 रहा।

सेकेण्ड पंडित के हंसते हुए मेरी ओर देखते ही मैं डरते हुए बोला, "सर कुछ नहीं गया। जो था वही रहा – मतलब वही 480 ।"

इस बार भी सेकेण्ड पंडित आश्चर्य से मेरे चेहरे की ओर ताकते रहे । मेरे बारे में अपना मत परिवर्तन करने का निश्चय कर दूसरे विद्यार्थियों को शून्य शब्द की संख्या का अर्थ समझाने के साथ, उसका दूसरा तात्पर्य भी समझाया और मेरे जवाब की सटीकता प्रमाणित की। इस बार भी सभी विद्यार्थी मेरी ओर आश्चर्य मिश्रित

शंका व ईर्ष्या से देखते रहे। इसी तरह सेकेण्ड पंडित ने उस दिन और चार-पांच मज़ेदार सवाल किए थे – जिनमें दूसरों के उत्तर गलत रहे, और मेरे सही।

वह दिन शायद मेरे जीवन का सौभाग्यशाली दिन था। क्योंकि मैं मन-ही-मन अपने को बुद्धिमान समझ पाया और गणित न आने के कारण जो गधे की उपाधि से विभूषित था, उसके प्रति उपेक्षा करने लगा। साथ ही गणित पढ़ाने वाले शिक्षकों के प्रति मेरे मन में द्वेष और नफरत का भाव जाग उठा।

मुझमें और एक गुण था। मैं तुकबंदी कर पद्य रचना किया करता था, उस समय मैंने जो पद्य लिखे थे उनमें से जो पंक्तियां मुझे याद हैं वे इस तरह हैं:

कोयल गा रही है
कितना सुमधुर गीत
काली समझ क्यों उसे
गाली देते हो मीत?

टप-टप गिरा पानी
आसमान न दिखा सुहानी।
गरज रहा था बादल
तड़क रही थी बिजली
चमक रही थी बदरी
पेड़ में पका है पिजुरी।
टें टर्र टें टर्र
मेढ़क पढ़ रहा मंतर।
चिपचिपाता है कादो
महीने का नाम भादो।
उमड़ कर जैसे बरसा
चली आ रही हो सहसा।
दिन में छाया अंधकार
घर से न निकला
कोई बाहर।

इसी तरह तुकबंदी कर मैं पद्य लिखा करता था। जब मैं

लिखने को बैठ जाता, तब शब्द अपने आप जुट जाते और पद भी मिल जाया करता था। जैसे धाम के साथ काम, कल के साथ बल, मन के साथ धन या गीत के साथ मीत मिलाकर पद्य रचना करके मैं काफी आत्मसंतुष्टि अनुभव करता था। मगर अपने कुछ अंतरंग मित्रों के अलावा मैं उन्हें किसी को नहीं सुनाता। खास तौर पर मैं अपने परम सखा मायाधर षडंगी को वो सब पढ़कर सुनाया करता था। मायाधर उन्हें सुनकर बड़ा खुश होता व कहता, "भविष्य में मैं एक कवि बनूंगा।" कवि होना बड़ी और अच्छी बात है, ये भी मुझे नहीं मालूम था। मैं खुश हो जाया करता था। मायाधर मुझसे नीचे की कक्षा में पढ़ने के बावजूद अपने व्यवसायी पिता के साथ बाहर आना-जाना कर मुझसे ज़्यादा जानकार था।

उसने कहा, "बुद्धिमान न होने पर कोई कवि नहीं हो सकता। कवि का सभी आदर व इज्ज़त करते हैं।" मैं मन-ही-मन सोचता – धत तेरी की! मैं क्या कवि बनूंगा। कवि ना गोभी। मगर मेरे मन में कवि बनने की बहुत आस थी। मैं बहुत करुण और संतप्त स्वर में बोला, "मायाधर मुझे तो गणित नहीं आता, मेरी इतनी बुद्धि कहां जो कवि बनूंगा?"

मायाधर मेरा ऐसा बंधु था जो मेरा दुख सह नहीं सकता। मुझे गणित नहीं आता है, मैं गणित में सौ में से शून्य या पांच-सात नम्बर लाता हूं, ये सब मायाधर को मालूम था। स्कूल में मैं गधे के रूप में जाना जाता था, यह भी वह जानता था। वह मन-ही-मन सुयोग की तलाश में था कि मुझे एक दिन अपनी कक्षा के सहपाठियों के सामने बुद्धिमान साबित करके छोड़ेगा।

एक दिन मैंने 'वीर बहूटी' नामक एक छोटा-सा पद्य लिखा था। उसे मायाधर को सुनाते ही वह काफी प्रसन्नता और उत्साह से बोला – "बचपन से ही जो ऐसी कविता लिखने लगा है, वह बड़ा होकर निश्चित ही एक कवि बनेगा।" मुझे उस पद्य की कुछ पंक्तियां अब भी याद हैं।

लाल मखमल सी वीर बहूटी
रहती कहां है? तू जाती कहां है?
किसने दिया तुझे ये दक्षिणी मलमल
घूंघट निकाल चलती है हर पल।
देख हमें क्यों छिप जाती है
हम क्या तेरे जेठ हैं?
नन्हा और नरम सा तेरा ये बदन
तुझे बनाया है कौन भगवन?
हरी घास की कालीन पर
चल रही है तू कितना मंथर।
वीर बहूटी – वीर बहूटी
तू है जग प्रसिद्ध रूपवती।

इस कविता को उसने मेरे हाथ से खींचकर अपनी जेब मे रखा। मैंने भी उससे नहीं मांगा। दूसरे दिन वह स्कूल

पहुंच कर हमारी कक्षा में आया। उस पीरियड में कोई शिक्षक न होने के कारण उसने इस कविता को ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर सबको सुनाया। हमारी कक्षा के कुछ बुद्धिमान गणित जानने वाले विद्यार्थी मायाधर के मुंह से कविता सुनकर काफी खुश हुए और पूछा, "इसे किसने लिखा है?" मायाधर मेरी ओर ऊंगली दिखाकर बड़े नाटकीय ढंग से बोला, "ये वहां बैठे हैं – कवि श्री महापात्र नीलमणि साहू।" मैं इस समय गर्व महसूस कर रहा था। मगर वही बच्चे अचानक हंस उठे। उनमें से एक मुझे चिढ़ाते हुए बोला, "जिसे मामूली-सा जोड़-घटाना नहीं आता वह गधा ऐसी कविता लिखेगा! बिल्कुल असंभव।"

हम उस वक्त सातवीं कक्षा में भक्त कवि मधुसूदन राव की 'साहित्य प्रसंग' किताब पढ़ते थे और उस ज़माने के एक व्याकरण के विद्वान बलभद्र नायक हमें पढ़ाया करते थे। मैंने अपने जीवन में वैसा साहित्य शिक्षक और नहीं देखा। उनकी उम्र उस वक्त करीब चालीस की होगी। उनके चमत्कार पूर्ण पढ़ाने का ढंग, 'जीवन चिंता' नामक कविता की व्याख्या – इन सबके बाद मुझमें अपने आप वैराग्य भाव जागृत हो गया। मैंने कुछ दिनों तक बड़ी तिक्तता अनुभव की और इस दरम्यान मायाधर के साथ सलाह मशविरा कर घर से चले जाने का निर्णय भी ले लिया। पर अचानक अपने स्कूल की पांचवीं कक्षा में पढ़ने वाली छात्रा मंजुलता के प्रेम में पड़कर मैं रुक गया। और बचपन से मातृविहीन छोटे भाई-बहनों की दुरावस्था की बात सोचकर मायाधर का मन भातृ-प्रेम से विचलित हो गया और हम दोनों ने घर छोड़कर संन्यासी बन जाने का विचार त्याग दिया।

साहित्य में हमारी कक्षा के विद्यार्थियों का अच्छा बोलबाला था। इसलिए उन्होंने मेरी कविता को बहुत पसंद किया। उनका यही कहना था, कि मेरे जैसा गधा ऐसी कविता नहीं लिख पाएगा। लेकिन मायाधर उन्हें छोड़ने वाला प्राणी नहीं था, वह बारबार अड़कर कहता रहा कि यह कविता इसने ही लिखी है और यह भविष्य में एक कवि बनेगा। मायाधर की ज़िद देखकर मेरी कक्षा का एक विद्यार्थी मेरी ओर देखते हुए बोला, "तब इसने किसी कविता से नकल की होगी।"

यह सुनते ही मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सिर पर बिजली गिर पड़ी। मैंने अपने को अपमानित अनुभव किया। मगर मायाधर अपनी बात पर अटल था। उसने मेरी दूसरी कविताओं के बारे में भी उल्लेख किया। उसके बाद दो लड़के मायाधर को लेकर वह कविता दिखाने के लिए साहित्य के अध्यापक के पास पहुंचे। मगर वहां गणित के

सर मुंह फुलाए हुए बैठे थे और उनके सामने गणित की किताब पड़ी थी। साथ ही उनकी बेंत भी थी। सारे लड़के मुझे अपमानित करने के लिए इस तरह तुले हुए थे कि उस कविता को गणित के गुरुजी के सामने रखकर बोले, "सर! इस कविता को पढ़िए! इसे नीलमणि ने लिखा है।" गणित के सर कविता को गणित के सवाल की तरह पढ़कर कुछ सोचते हुए और उस बेंत को हिलाते हुए मुझे अपने पास बुलाया, "अरे! ऐ लड़के इधर आ!"

मैं डरते हुए उनके पास गया। हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हुआ। वे सिर पर बेंत छुआकर धमकाते हुए बोले, "यह कविता तूने लिखी है? सच बोल। नहीं तो तीन नंबर के गधे पीट-पीट कर तेरी खाल उतार दूंगा!"

मैं डरते हुए बोला, "हां सर! मैंने लिखी है!"

गणित के सर ने फिर आँखे लाल कर मुझे धमकाया, "चुप कर गधे! झूठ बोलता है। तूने इसे नकल नहीं किया है?"

अबकी बारी मैं ज़ोर से रो पड़ा, "नहीं सर ! मैंने कहीं से नकल नहीं किया है। अपनी बुद्धि से लिखा है। (अचानक 'मन से' शब्द की जगह 'बुद्धि से' शब्द पता नहीं कैसे मुंह से निकल गया।)

गणित के सर ने बेंत से मुझे पीटकर अपमानित करते हुए कहा, "बुद्धि से लिखा है? तेरी बुद्धि भी है? नालायक कहीं का। घटाना नहीं आता, सातवीं कक्षा में पढ़ता है! कितने नुआ दो सौ सात, बोल तो?"

तेईस नुआ दो सौ सात, यह मुझे पता होने के बाद भी उस वक्त दुख और क्रोध के कारण बोल न सका। मैं अपने हाथों में मुंह छिपा कर रोने लगा।

सर मेरी पीठ पर और एक बेंत जमाते हुए बोले, "जा भाग! नालायक, गधा कहीं का।"

मैं वहां से भागकर बच गया। मेरी कक्षा के सहपाठी आनंद से किला फतह करने जैसा शोर मचाते हुए कक्षा में लौट आए! पर मायाधर दुःखी और निराश होकर मेरे पास आया। उसके बाद हम दोनों कक्षा में न जाकर स्कूल छोड़कर चले आए और घर नहीं गए, वहीं घने ताड़ के वृक्षों के बीच बालू के ढेर पर बैठे। दोनों ही मित्र चुप थे। कोई किसी से बात नहीं कर रहा था। थोड़ी देर बाद मायाधर ने मुंह खोला, "अब इस स्कूल के विनाश के दिन आ गये हैं। मैं इस कविता को साहित्य के सर को दिखाऊंगा। ये गणित के सर कोई मनुष्य हैं? गणित कर-कर उसके दिन बीत रहे हैं। साहित्य के सर सारी बातें समझ जाएंगे।"

मैनें मायाधर की ओर बड़ी निराशा भरी नज़र से देखा और कहा, "नहीं

किसी को यह कविता दिखाने की ज़रूरत नहीं है। कोई विश्वास नहीं करेगा कि यह कविता मैंने लिखी है। साहित्य के सर भी मुझ पर संदेह करेंगे। लेकिन मायाधर, मैं कुताम चण्डी की शपथ लेकर कह रहा हूं, मैंने इसे कहीं से नकल नहीं किया है।''

मायाधर ने मेरी बात का कोई जवाब ने देकर, मेरा सिर अपनी गोद में रख लिया। तब मैंने कहा, ''जब मैं बड़ा होकर बहुत बड़े-बड़े पद्य लिखूंगा तब ये सब नालायक समझेंगे कि मैं किसी की नकल न कर अपनी बुद्धि से लिखता हूं।''

हम दोनों घर वापस आ गए। मगर मैं काफी उदास हो गया। मुझे ऐसा लग रहा था मानो दुख से मेरा हृदय फट जाएगा। उस दिन स्कूल में जैसा अपमानित हुआ वैसा अपमान मुझे जीवन में और कहीं नहीं मिला।

अपमान बोध की अनुभूति मेरे जीवन में वह पहली थी। उसके बाद विभिन्न समय, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा, विभिन्न क्षेत्रों में मैं अपमानित नहीं हुआ हूं, ऐसी बात नहीं। पर मैं किसी के अपमान को अपने मन के भीतर जगह नहीं देता। क्योंकि धीरे-धीरे मेरी मान्यता बन गई कि जो अपमान करता है, अंत में वही अपमानित होता है। अपमान को अगर ग्रहण न किया जाए तब वह अपमान अपमानकारी के पास दुगुने वेग से लौट कर, उसे आक्रांत करता है।

बचपन के उस अपमान को मैं आज तक नहीं भूल पाया। मेरे कोमल मन पर उस दिन जो चोट लगी थी उसकी जलन मैं आज भी अनुभव कर रहा हूं। उसी चोट से मुझे सीख मिली है, कि निरीह, निरपराध लोगों का जानकर या अनजाने में अपमान करने पर – विश्व की मानवता के मर्म पर आघात होता है।

छोड़िए इन बातों को। उस दिन के बाद और कभी मेरी कविता की चर्चा स्कूल में नहीं हुई। मैं भी गणित को अपने वश में करने की कोशिश में लग गया। पर वह विद्या मेरे जीवन भर की कोशिश के बाद भी हासिल नहीं हो पाई और इस जन्म में शायद यह संभव हो भी नहीं पायेगा। फिर भी मेहनत करके मैं किसी तरह माइनर परीक्षा के गणित के पेपर में पास होने लायक मार्क ले ही आया था।

नीलमणि साहू महापात्र: प्रसिद्ध उड़िया लेखक।

चित्र: शोभा घारे: पेशेवर चित्रकार। भोपाल में रहती हैं।

उपरोक्त प्रस्तुति 'अभिशप्त गंधर्व' संग्रह में छपी नीलमणि साहू की कहानी 'मिद्दू अवधान का सर्वनाश' का एक अंश है।